

ब्रह्म भावना

जगत के सब धर्म के लोग इस बात को अवश्य मानते हैं कि पदार्थ मात्र में एक विशेष तत्व भरा हुआ है । इसी तत्व को 'सत्' कहते हैं महा नास्तिक भी इसका खण्डन नहीं कर सकता । इन्द्रियों द्वारा जो कुछ ज्ञान होता है उसके आगे कुछ भी नहीं, ऐसा मानने वाले बड़े बड़े नास्तिकों को भी इतना तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि, जगत् यह पदार्थ है, चाहे वह पदार्थ क्षणिक हो या चिरस्थायी हो । यदि वह है तो उसका अस्तित्व अवश्य है । अस्तित्व, बिना सत्(,) के, नहीं हो सकता, यह अटल नियम है । सत् का भाव 'सत्ता' है, एवं उसी से पदार्थ मात्र का अस्तित्व है । असत् कभी सत् नहीं होता एवं सत् कभी असत् नहीं होता । इसी का समर्थन भगवान श्री कृष्ण ने किया है कि "नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः" किसी धर्म का तत्वज्ञ चाहे आस्तिक हो चाहे नास्तिक हो, उसको सत् (का) को स्वीकार करना ही होगा । चाहे कोई उस 'सत्ता' को आत्मा कहे, शक्ति कहे, संस्कार कहे, शून्य कहे, विज्ञान कहे, नेचर या सोल कुछ भी कहे, सिवाय उसके पदार्थ मात्र का अस्तित्व ही नहीं हो सकता । विज्ञान क्या है पदार्थ मात्र में भरी हुई सत्ता का विकास है । बीज में यह सत्ता प्रच्छन्न है । ज्ञानी अज्ञानी, आस्तिक, नास्तिक, धर्मी, विधर्मी, चाहे जैसा कट्टर से कट्टर अभिमानी पुरुष हो, उसे इस सत्ता को मानना ही होगा । मीमांसा का कर्म वेदान्त का ब्रह्म, गौतम का कुलालसम कर्ता, कणाद का पदार्थ, सांख्य की प्रकृति एवं पुरुष योग का जीव, ईश्वर संयोग, इन सबका उसी सत्ता में पर्यवसान है । वैज्ञानिक ज्ञान का विकास क्या है ? वह वैज्ञानिक ज्ञान कहां से आता है ? एवं वह वैज्ञानिक ज्ञान कहां रखा हुआ है ? इस के उत्तर में उसी सत्ता का आन्तरभान प्रतीत होगा । आन्तरभान ही आत्म सत्ता का रूप है । और यदि आन्तरभान है तो अवश्य कोई न कोई 'सत्' है जिस का भाव 'सत्ता' सर्वत्र चैतन्य रूप भरी हुई है ।

जब यह आत्मसत्ता सर्व व्यापक, समान एक रूप, अभेद है तो उस से बने हुए जगत में विविध पदार्थ, विविध धर्म, विविध भान विविध कल्पना, विविध चेष्टा, विविध विचार विविध आचार, विविध व्यवहार, भेदाभेद, संकल्प विकल्प, उच्च नीच, शत्रु मित्र, सुख दुःख, शीतोष्ण, आदि अनेक भिन्न भिन्न प्रवृत्तियों एवं द्वन्द्वों की जहां तहां भर मार क्यों है ? यह तो अटल नियम है कि सत् का कभी असत् नहीं होता असत् का सत् नहीं होता फिर इस सिद्धान्त के विपरीत क्षण क्षण में सत् का असत् एवं असत् का सत् होता हुआ क्यों प्रतीत होता है ? हमारे जन्म, स्थिति, मरण में प्रतिकूलानुकूल सामान्य अद्भुत घटनायें उत्पन्न होके, हमारा जीवन भिन्न रूप विविध प्रकार क्यों व्यतीत होता है ? एवं सर्वत्र कुछ कहीं कुछ कहीं, जीवन कलह में सब की अज्ञान दशा, सामान्य सूक्ष्म कीट से मनुष्य तक, किसी में कहीं कुछ समानता नहीं इस का कारण क्या है ? यह सब प्रकृति का विरोधाभास केवल चेतन पदार्थों ही में है ऐसा नहीं । यह सब वृक्ष, लता, पाषाण, मृत्तिका आदि जड़ चेतन पदार्थ में समान पाया जाता है तो यह कैसा आत्मतत्त्व है ? ऐसा यह आत्मतत्त्व आत्म सत्ता वा सत् क्या सर्व व्यापक,

समान एक रूप अभिन्न हो सकता है ? इन प्रश्नों का उत्तर देना अत्यन्त कठिन होकर भी अत्यन्त सुलभ है । हमारे यहां के दार्शनिक तत्त्वज्ञों ने इसका खूब विचार किया है । पदार्थ मात्र में चैतन्य भरा हुआ है इसका उन्होंने पहले ही अनुभव ले रखा है । अब पाश्चिमात्य उस प्रमेय को मान कर उस का अनुभव ले रहे हैं । विज्ञान विशारद जगदीश चन्द्र बसु तो इस तत्त्व को प्रत्यक्ष करने के लिये कई यन्त्रों का आविष्कार कर चुके हैं । उन्होंने वनस्पतियों के सुख दुःखादि मनोविकार एवं चेष्टायें प्रत्यक्ष कर दिखाई हैं । वायु में एक प्रकार का प्रकाश प्रत्यक्ष कर दिखाया है । पदार्थ मात्र में विद्युत्क्रिया एक रूप, समान, अभिन्न चलती है, एवं उस प्रक्रिया का कारण जड़ भौतिक शक्ति नहीं । कोई ऐसी अज्ञात शक्ति सत्ता है, जो नित्य, अनन्त, अनादि है । इसी को शास्त्रकारों ने 'चित्' कहा है । 'सत्' की विकाश रूपा शक्ति चित् है, और वह सब जड़ चेतन में एक रूप भरी हुई है । उसका क्षण क्षण में परिवर्तन होके पदार्थ मात्र का विकाश-विनाश होता है । यह बात सब को अवश्य ही माननी होगी ।

किसी पदार्थ का क्रमशः विकास होकर नाश होजाने पर अवशेष क्या रहता है ? इसका उत्तर यदि "कुछ नहीं", ऐसा होगा तो पदार्थ का नाश हो जाने पर, उसी पदार्थ का प्रत्यक्ष रूप फिर क्यों दृष्टि गोचर होता है । पदार्थमय जगत् की उत्पत्ति है तो, स्थिति होकर नाश भी है । उसका नाश होजाने पर "कुछ नहीं", इस उत्तर में फिर उसका उत्पन्न होना ही असम्भव होगा । वृक्ष का नाश होकर फिर उसका उत्पन्न होना न माना जायगा तो, उसके बीज का फिर उसका वही वृक्ष हम देखते हैं उसके लिए क्या कहा जायगा ? अर्थात् सद्रूप पदार्थ का कभी अत्यन्ताभाव नहीं होता उसका रूपान्तर मात्र होता है और उसमें की वह सत्ता चैतन्य रूप बिना किसी विकाश विनाश के व्यापक, समान, एक रूप अभिन्न रहती है । समय पाते ही फिर उसका उदय होता है । इसी प्रकार जगत् का प्रलय होजाने पर, उसकी फिर अभिव्यक्ति होती है । उसका ज्ञान हमें यथावत् नहीं होता । इसलिए हमको सर्वत्र भेददृष्टि भरी हुई प्रतीत होती है । चैतन्य सर्वत्र व्यापक, एक रूप, अभेद है इसका अनुभव हमारे यहां सबने पहले ही ले रखा है । अब यूरोप के विद्वान भी इसका अनुभव करने लगे हैं । परिचित (परिचित्त) ज्ञान क्या है ? विचार शक्ति क्या है ? विचार वाचन क्या है ? यह सब उसी तच्छक्ति का अर्थात् आत्म शक्ति का व्यापकत्व, एक रूपत्व एवं अभिन्नत्व है । उस 'सत्', 'चित्', शक्ति का 'आनन्द' में आत्म तत्व में हम विकाश नहीं कर सकते इसीलिए उपर्युक्त जटिल प्रश्न उत्पन्न होते हैं, हुए हैं और होंगे । कभी इन प्रश्नों का समाधान कारक उत्तर नहीं मिलेगा । हमारे शास्त्रों ने इसका एक मात्र उपाय बताया है ।

यावत्सर्वं न संत्यक्तं तावदात्मा न लभ्यते ।

सर्वस्तु (सर्वस्तु) (सर्ववस्तु) परित्यागे शेष आत्मेति कथ्यते ॥

जब तक सब त्याग नहीं किया जाता तब तक आत्मा प्राप्त नहीं होता । सब

वस्तुओं का त्याग होने पर शेष जो कूछ रहता है उसे 'आत्मा' कहते हैं ।

आत्मा ब्रह्म है (हैं ?) एवं ब्रह्म आत्मा है । आत्मा की शक्ति चिद्रूप चैतन्य शक्ति है और वही ब्रह्म की सत्ता स्वयं प्रकाश शक्ति है । वह जगत् के प्रत्येक अणु रेणु (त्रसरेणु) परमाणु में भरी हुई है और वही चैतन्य शक्ति सर्वत्र प्रवाहित, प्रकाशित एवं व्याप्त है ।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भाति (भान्ति) कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तं अनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

जहां सूर्य चन्द्र तारा प्रकाशित नहीं होते । ये विद्युच्छक्तिएं प्रकाशित नहीं होती वहां अग्नि की क्या बात है ? वह (अपने प्रकाश से) प्रकाशित होता है तब सब प्रकाशित होते हैं ।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥

वह तेज का भी तेज है एवं उसे अन्धकार से अलग कहते हैं । यह ज्ञान-आत्म ज्योति, ज्ञेय, जानने योग्य, एवं ज्ञान गम्य परा विद्या से जानी जाती है और वही सबके हृदय में विराजमान है । उसी आत्मा को खोजना चाहिए, जानना चाहिए और उस ही को प्राप्त करना चाहिए ।

तमेवैकं जानथ आत्मानम् ।
अन्यावाचो (अन्योवाचो) विमुञ्चथ, अमृतस्यैष सेतुः ॥

उसी एक आत्मा को जानो, दूसरी बातों को छोड़ो । यह अमृत का (के) सेतु है । इस में क्या सन्देह है ? उस आत्म ज्ञान के लिए भगवान श्री कृष्ण ने कहा है ।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्व दर्शिनः ॥

उस ज्ञान को तू साष्टांग प्रणाम से, बार बार प्रश्न करने से तथा सेवा करने से समझ कि तत्त्वदर्शी ज्ञानी तुझे इसका उपदेश करेंगे ॥ इसलिए ज्ञान की प्राप्ति के लिए और ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए तत्त्ववेत्ता आचार्यों की सेवा में जाकर अपना सर्वस्व उनके अर्पण करके उनकी सेवा व आज्ञा में अपने शरीर और मनकी भावना का त्याग कर देना चाहिए । ऐसा करने से वह दया के सागर वह आनन्द प्रदान करेंगे कि जिसको पाकर जीवात्मा समस्त क्लेशों से छूटकर आनन्द रूप होजाता है ॥